© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 12 Issue: 02 | April - June 2021
Paper is available at http://www.jrps.in | Email : info@jrps.in

कालिदासकालीन लोक विश्वास व धारणाएँ : विशेष संदर्भ – अभिज्ञानशाकुन्तलम्

Kuldeep Singh, kuldeepkaushik4545@gmail.com

1) सारांश :-

किसी भी कवि या रचनाकार का कार्य तत्कालीन समाज से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता। यदि किसी भी कवि की रचना, काव्य या लेख समाज में लोकप्रिय है तो यह स्पष्ट है कि वह रचना अपने काल और युग में प्रचलित लोक-विश्वास व धार्मिक, सामाजिक मान्यताओं का वाहक है। महाकवि कालिदास द्वारा रचित अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में हमें तत्कालीन समाज के विश्वासों, धारणाओं और मान्यताओं के दर्शन होते हैं। प्रस्तुत शोध लेख के माध्यम से महाकवि कालिदासकृत अभिज्ञानशाकुन्तलम् में प्राप्त विवरण द्वारा तत्कालीन लोक-विश्वास व सामाजिक धारणाओं को प्रकाश में लाने का प्रयास किया गया है।

मुख्य शब्द : सामाजिक, धारणा, संस्कार, विश्वास, मान्यता, इत्यादि।

2) प्रस्तावना :-

किसी समाज का संपूर्ण जीवन-संस्कार उस समय प्रचलित मान्यताओं और परम्पराओं पर टिका होता है। ये मान्यताएँ, विश्वास एवं धारणाएँ उस समय प्रचलित सांस्कृतिक संसाधनों द्वारा पोषित होते हैं तथा समकालीन साहित्यिक रचनाओं में प्रतिबिम्बित होते हैं। अतः साहित्य और समाज एक-दूसरे के अनुपूरक भी होते हैं और अनुप्रेरक भी होते हैं। इस दृष्टि से महाकवि कालिदास ने अपनी रचना अभिज्ञानशाकुन्तलम् में वैदिक काल से लेकर अपने समय तक जिन शाश्वत भावों एवं विचारों का चित्रण किया है। वे सदैव लौकिक समाज में अनुकरणीय रहेंगे। यदि किसी युग में प्रचलित लोकविश्वासों व धारणाओं की जानकारी प्राप्त करनी हो तो साहित्य वह प्रमुख स्रोत है जिसके द्वारा तत्कालीन लोक-विश्वास व धारणाओं का ज्ञान संभव होता है। विशेष रूप से संस्कृत साहित्य में इस प्रकार की जानकारी प्रचुरता से प्राप्त होती है, न केवल महाकवि कालिदासकृत रचनाओं में अपितु सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में अभिज्ञानशाकुन्तलम् सर्वश्रेष्ठ नाटक है।

" काव्येषु नाटक रम्यं , तत्र रम्या शकुन्तला "

यह उक्ति इस नाटक की लोकप्रियता को सिद्ध करती है। प्रस्तुत नाटक में समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों के विश्वास व धारणाओं का वर्णन बड़ी सहजता से महाकवि द्वारा किया गया है।

3) **कालिदासकालीन लोक विश्वास व धारणाएँ :-**

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में नायक व नायिका का प्रेम, विरह व पुनर्मिलन के साथ-साथ अन्य पात्रों के माध्यम से तत्कालीन युग में प्रचलित धारणाओं व लोकमत की झलक मिलती है। आंगिक, मानसिक भाव-विकार, परिवर्तन एवं वस्तु व्यापार को निकटवर्ती भविष्य में होने वाले शुभ और अशुभ रूपी लोक विश्वास में न केवल निम्न वर्ग की आस्था थी, अपितु उच्च वर्ग की आस्था भी समान रूप से इसकी समर्थक दिखाई देती है। प्रथम अंक में जब दुष्यन्त महर्षि कण्व के आश्रम में प्रवेश करता है तब उसकी दाहिनी भुजा में स्फुरण होता है -

"शान्तमिदमाश्रमपदं स्फुरति च बाहुः कुतः फलमिहास्य ।

अथवा भवितव्यानां द्वाराणि भवन्ति सर्वत्र ।।"

अर्थात् इस शान्त आश्रम में मेरी दाहिनी भुजा क्यों फड़क रही है ? यहाँ पर इसका क्या औचित्य ? अथवा भावी घटनाओं के लिए सर्वत्र ही द्वार बन जाते हैं अर्थात् विधि के द्वारा निश्चित कार्य अवश्य ही होता है। यहाँ पर दुष्यंत अपनी भुजा के फड़कने रूपी शुभ संकेत (शकुन) में अपना विश्वास दिखाता है। वह सोचता है कि इस शान्त वन में फल प्राप्ति कहाँ से होगी? यहाँ फलप्राप्ति का अभिप्राय है- सुंदर स्त्री की प्रेयसी के रूप में प्राप्ति। दुष्यन्त को फलप्राप्ति का कोई उपाय इस निर्जन वन में संगत नहीं लग रहा तथापि वह अपनी दाहिनी भुजा के स्फुरण को शुभ (शकुन) मानता है और अपने भवितव्य के प्रति आश्वस्त रहता है। 'शकुन शास्त्र" में भी दाहिनी भुजा का फड़कना सुन्दर स्त्री की प्राप्ति का सूचक बताया गया है –

" वामेतरभुजस्पन्दोवरस्त्रीलाभसूचकः "

अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक के इस दृश्य से प्रतीत होता है कि राजा जैसा उच्च कुलीन व्यक्ति शकुन और अपशकुन को मानता था। नारी के बाएँ एवं पुरुष के दाएँ अंग में स्फुरण को शुभ तथा इसके विपरीत नारी के दाएँ व पुरुष के बाएँ अंग का फड़कना अशुभ माना जाता था। जनसाधारण ऐसे आंगिक परिवर्तनों को भावी शुभ और अशुभ संकेतों के रूप में देखता था । इसे तत्कालीन समाज में शकुन और अपशकुन कहा जाता था। कालिदासकालीन समाज में शकुन-अपशकुन के प्रति आस्था एवं विश्वास रूपी घटनाएँ तथा उनसे होने वाले

लाभ-हानि पर अनेक अवसरों पर प्रकाश डाला गया है। इससे पता चलता है कि उस समय धार्मिक रूप में शकुन-अपशकुन को स्वीकार कर लिया गया था। स्त्री अपने दाएँ अंग का फडकना अशुभ मानती थी तभी तो पंचम अंक में शकुन्तला अपने दाएँ नेत्र के फड़कने पर डर जाती है और भावी अनिष्ट की आशंका करते हुए कहती है- अहो ! किं मे वामेतरम् नयनम् विस्फुरति "? यहाँ पर दाएँ नेत्र के फडकने को अपशकुन समझना और उससे भावी अनष्टि का निश्चय करने वाली शकुन्तला एक वनवासिनी लड़की है जो सामान्य जनता का प्रतिनिधित्व कर रही है। स्पष्ट है कि उक्त लोक-विश्वास व धारणाएं तत्कालीन समाज के जीवन को समान रूप से प्रभावित कर रहे थे। इसी प्रकार सप्तम अंक में भी मारीच के आश्रम में प्रविष्ट होते समय दुष्यन्त की दाहिनी भुजा में पुनः स्फुरण होता है। वह कहता है -- हे भुजा ! यहां अपने मनोरथ पूरे होने की कोई आशा नहीं है फिर तुम व्यर्थ ही क्यों फड़क रही हो ? यह सत्य है जो पहले लक्ष्मी का तिरस्कार करता है उसका कल्याण दुःख रूप में परिवर्तित हो जाता है -

"मनोरथाय नाशंसे किं बाहो स्पन्दसे वृथा ।

पूर्वविधीरितं श्रेयो दुःखं हि परिवर्तते ॥" 7/13

भारतीय परम्परा के अनुसार मनुष्य के भाग्य में जो लिखा होता है, वह अवश्य होता है। भाग्य को ही देव, भवितव्य या विधि रूप में जानते हैं। तत्कालीन समाज में दुष्टग्रहों के कारण व्यक्ति के जीवन में अनेक कठिनाइयों के आने की मान्यता प्रचलित थी। दुर्देव के शमनार्थ व अनिष्ट की शांति के लिए तीर्थयात्रा आदि मांगलिक कार्यों का भी विधान किया जाता था। अभिज्ञानशाकुन्तलम् के प्रथम अंक में ही शकुन्तला के प्रतिकूल भाग्य की शान्ति के लिए महर्षि कण्व सोमतीर्थ पर जाते हैं -

"इदानीमेव दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य

दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थम् गतः"

अमंगल के निवारणार्थ शकुन्तला को यज्ञीय अग्नि की परिक्रमा के लिए गौतमी द्वारा कहा जाना "वत्से, इतः सद्यो हुताग्नि प्रदक्षिणी कुरुष्व ?" और शकुन्तला के रुग्ण होने पर गौतमी का "यज्ञविषयकशान्त्युदक" लेकर उसके पास जाना, तत्कालीन धार्मिक अंधविश्वास-मान्यताओं को प्रदर्शित करता है।

इसके अतिरिक्त अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में हमें तत्कालीन समाज में वनस्पतियों में जीव होने की धार्मिक मान्यता के भी दर्शन होते हैं। चतुर्थ अंक में "वृक्षों की शाखाओं से निकले पल्लवों के समान कोमल करतलों वाले वनदेवताओं द्वारा शकुन्तला के लिए आभूषण प्रदान करने की घटना" तत्कालीन समाज में वृक्षों में देवताओं के निवासस्थान की धार्मिक भावना को प्रदर्शित करती है ।

शकुन्तला और दुष्यन्त के जीवन में उतार-चढ़ाव वस्तुतः उनके पूर्व-जन्मों का फल है। प्रिय दुष्यन्त की स्मृति में निमग्न शकुन्तला को द्वार पर आये दुर्वासा के आगमन का पता ही नहीं चलता और ऋषि क्रोधित होकर उसे शाप दे देते हैं, यह शकुन्तला के ही कर्म का फल है कि उसे दुष्यन्त पहचानने से मना कर देता है और एकमात्र उपाय पहचान-चिह्न अंगूठी भी शचीतीर्थ में गिर जाती है। सप्तम अंक में भरत जब शकुन्तला से दुष्यन्त के विषय में पूछता है, तब शकुन्तला कहती है -

"वत्स ! ते भागधेयानि पृच्छ ।"

अत: स्पष्ट है लोगों का विश्वास था कि पुण्यकार्य का फल पुण्यफल की प्राप्ति है।

सप्तम अंक में शकुन्तला को देखकर दुष्यन्त उसके पैरों में गिरकर क्षमा मांगता है लेकिन शकुन्तला अपने दु:ख का कारण अपने पूर्वकर्मों को ही बताती है-

"उत्तिष्ठतु आर्यपुत्र:! नूनं मे सुचरितप्रतिबन्धकम् पुराकृतं तेषु दिवसेषु परिणामाभिमुखमासीत् येन सानुक्रोश: अप्यार्यपुत्रो मयि विरसः संवृत्त: "

कर्मविपाक (पूर्वजन्म में किए गए कर्मों के फल की प्राप्ति का समय) उस समय लोकप्रचलित धारणा थी।

संस्कृत साहित्य में शापविषयक अनेक प्रसंग प्राप्त होते हैं। शाप देने वाला कोई विशेष होता है तो उसका कारण भी विशेष होता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में दुष्यन्त की स्मृति में डूबी शकुन्तला को दुर्वासा के आगमन का पता ही नहीं चलता। परिणामस्वरूप क्रुद्ध दुर्वासा उस हृदयशून्या को शाप दे देते हैं-

"विचिन्तयन्ती यमनन्यमानसा तपोधनम् वेत्सि न मामुपस्थितम् ।
स्मरिष्यति त्वाम् न स बोधितोपि सन् कथाम् प्रमत: प्रथमम् कृतामिव ||" 4/1

यद्यपि शाप की परिकल्पना करके कवि ने नायक के चरित्र की रक्षा की है लेकिन यहां ध्यातव्य है कि कालिदास स्वयं भी लोक-विश्वास-मान्यताओं से कुछ न कुछ प्रभावित रहे होंगे। चतुर्थ अंक में दुर्वासा के शाप

© INTERNATIONAL JOURNAL FOR RESEARCH PUBLICATION & SEMINAR
ISSN: 2278-6848 | Volume: 12 Issue: 02 | April - June 2021
Paper is available at http://www.jrps.in | Email : info@jrps.in

वाले प्रसंग में शकुन्तला के सौभाग्य देवता की अर्चना हेतु पुष्पपात्र का गिरना शकुन्तला के भावी जीवन की घटनाओं का प्रतीकात्मक संकेत है। इसके अतिरिक्त उस समय अतिथि को अत्यधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। अतिथि के आने पर पादोदक, फल आदि प्रदान करके उसका सत्कार किया जाता था। इसके साथ अपमानित अतिथि शाप देने में भी समर्थ था। दुर्वासा का यह कथन- आ: ,

अतिथिपरिभाविनि ! जहां इस कथन की पुष्टि करता है वहीं तत्कालीन समय में अतिथि के महत्त्व को भी बताता है। नाटक के चतुर्थ अंक में ऋषि कण्व को आकाशवाणी के माध्यम से शकुन्तला-दुष्यन्त के विवाह की सूचना प्राप्त होती है। स्पष्ट है कि आकाशवाणी में लोगों का विश्वास था। इसी प्रकार धर्म के प्रति भी जन-आस्था दिखती है। समाज में देवी-देवताओं की उपासना भी विहित थी। देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए, अमंगल-विनाश के लिए एवं वातावरण की पवित्रता के लिए यज्ञादि अनुष्ठान कराये जाते थे और प्रसाद भी चढ़ाया जाता था। साथ ही व्रत-उपवास भी रखे जाते थे एवं उनका पारणा भी किया जाता था। धार्मिक व्यवस्था व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक थी। उसमें रूढ़िवादिता एवं कट्टरता बिल्कुल नहीं थी अर्थात् धार्मिक व्यवस्था सुव्यवस्थित एवं अनावश्यक प्रपंच से रहित थी।

तत्कालीन समाज में भूत-प्रेत आदि में लोगों का बहुत विश्वास था। सांसारिक आधि-व्याधि से मुक्ति के लिए रक्षासूत्र आदि पहनने की प्रथा थी। भरत के हाथ में 'अपराजिता' नामक जड़ी-बूटी का रक्षा-सूत्र बाँधा गया था।

4) निष्कर्ष :-

इस प्रकार अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में लोक विश्वास व मान्यताओं के प्रभाव से कोई भी अछूता नहीं दिखता है। चाहे वनवासी निरीह प्राणियों का प्रतिनिधित्व करने वाले महर्षि कण्व, शकुन्तला, गौतमी इत्यादि पात्र हैं या राजप्रासाद से जुड़े लोग हों या सामान्य प्रजा हो या अप्रतिम गुणों से युक्त नाटक का नायक राजा दुष्यन्त हों या परम तपस्वी परम क्रोधी दुर्वासा हों या दैवीय गुणों से युक्त मेनका तत्कालीन लोक विश्वासों व धारणाओं का समर्थन करते नजर आते हैं। अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक में दर्शाया गया है कि धार्मिक लोकविश्वासों व धारणाओं को अंधविश्वास की सीमाओं तक अपनाया गया है। तत्कालीन लोक विश्वासों को आंशिक परिवर्तन के साथ परवर्ती समय में भी अपनाया गया है। जैसे दुष्यंत व शकुन्तला के द्वारा आंगिक विकार को शकुन व अपशकुन के रूप में देखा गया। आधुनिक समाज में भी इस प्रकार के संकेतों को भावी शुभ व अशुभ घटनाओं का परिचायक माना जाता है। चारित्रिक शुद्धता के प्रति आधुनिक समाज की धारणा ठीक वैसी ही है जैसी कालिदासकालीन युग में थी। निश्चय ही महाकवि कालिदास की भी अपनी कोई

धारणा है जिसको जनसामान्य तक पहुंचाने के उद्देश्य से अभिज्ञानशाकुन्तलम् नाटक की रचना की गई। नाटक में नायक और नायिका के द्वारा गान्धर्व विवाह कर लेने के पश्चात आई कठिनाइयों से प्रतीत होता है कि महाकवि परिजनों को बताए बिना स्थापित किए गए प्रणय संबंधों का समर्थन नहीं करता। आधुनिक युग में भी इस प्रकार स्थापित संबंधों का दुष्परिणाम देखने को मिलता है। अतः स्पष्ट है कि केवल आंशिक स्वरूप परिवर्तन के साथ प्रायः समस्त लोक विश्वास व धारणाएं आज भी प्रचलित हैं और समाज में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करने के साथ-साथ युगों-युगों से मनुष्यों को कर्मप्रवृत्त होने की शिक्षा दे रहे हैं।

संदर्भग्रन्थ-सूची

1. द्विवेदी आचार्य पं. शिव प्रसाद, अभिज्ञानशाकुन्तलम् (भारतीय विद्या प्रकाशन, दिल्ली) चतुर्वेदी, आचार्य सीताराम, वि. सं.-2065. अभिज्ञानशाकुन्तलम् (कालिदास-ग्रन्थावली), उत्तर प्रदेश
2. संस्कृत संस्थान, लखनऊ,
3. द्विवेदी, शिववालक, 2011. अभिज्ञानशाकुन्तलम्, हंसा प्रकाशन, जयपुर। झा, तारणीश, 1989, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, प्रकाशन केंद्र, लखनऊ।
4. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 4/1
5. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 1/16
6. अभिज्ञान शाकुन्तलम् 7/13